शोध मंथन Vol. XII No.IV Oct.-Dec. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.354 (SJIF)

गीता में सदाचार विवेचन

प्राप्तिः 03.11.2021
स्वीकृतः 27.12.2021

डॉ० इन्दिरा जुगरान
एसोसिऐट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नई टिहरी
टिहरी गढ़वाल
ईमेलः *indirajuyaljugran@gmail.com*

श्रीवेदव्यास जी ने महाभारत में गीता का वर्णन करने के उपरान्त कहा हैः–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

गीता सुगीता करने योग्य है इसे भली भाँति पढ़कर अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है जो कि स्वयं पद्मनाभ भगवान श्रीकृष्ण के मुखकमल से प्रकट हुई है। गीता एक ऐसा शास्त्र है जिसमें एक भी शब्द सदुपदेश से खाली नहीं है। श्रीभगवान ने मानव जाति के लिए धर्मपरक सदाचार व त्यागपरक आचरण के अनुसरण पर जोर दिया है। श्रीभगवान ने 'शोकसंविग्नमना' एवं धर्मसंमूढचेता अर्जुन को निमित्त बनाकर हम लोगों को सदाचार युक्त जीवन बनाने तथा दुर्गण–दुराचारों के त्यागने की अनेक युक्तियाँ भगवद्गीता में बतलाई हैं। वर्ण, आश्रम, स्वभाव एवं परिस्थिति के अनुरूप विहित कर्तव्य कर्म करने के लिए प्रेरणा करते हुए श्री भगवान कहते हैंः–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
सयत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।। (गीता 3/21)

श्रेष्ठ महापुरूष जिस प्रकार से आचरण करता है, उसी का अनुसरण करके अन्य लोग भी उसी प्रकार से आचरण करते हैं। सब लोग श्रेष्ठ महापुरूषों द्वारा प्रमाणिक बनाये हुए आदेशों का पालन करते हैं। अतः श्रेष्ठ पुरूषों को सदा उत्तम आचरण करना चाहिए ताकि उनके चरित्र से शिक्षा लेकर सब लोग कल्याण कर सकें।

सदगुण से सदाचार प्रकट होता है और सदाचार से सद्गुणदृढ़ होते हैं। इसी प्रकार दुर्गण दुराचार का भी परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दुर्गुण दुराचार सांसारिक कामना और अभिमान से उत्पन्न होते हैं। दृढ़ निश्चय होने पर दुराचारी को भी भगवत् प्राप्ति रूप सदाचार के चरमलक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। (गीता 9/30)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरी भक्ति करता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।

भक्ति के प्रभाव से महापापी मनुष्य भी पापों से पवित्र होकर धर्मात्मा बन जाते हैं क्योंकि उसने ऐसा पक्का निश्चय कर लिया है कि किसी प्रकार के प्रलोभन अथवा विपत्ति के आने पर भी अब वह विचलित नहीं किया जा सकता। शास्त्रविहित कर्म करने पर सदाचार स्वतः पुष्ट होता है –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।। (गीता 9/27)

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! तुम जो कर्म करते हो, जो कुछ खाते हो, जो हवन करते हो, जो दान देते हो और जो तप करते हो उसे मुझे अर्पण कर दो। अर्थात् यज्ञ, दान, तप, भोजन, और कर्म इत्यादि सब कुछ ईश्वरार्पण बुद्धि से करना चाहिए। यहाँ केवल सात्विक यज्ञ, सात्विक तप, सात्विक भोजन, और सात्विक कर्म के लिए कहा गया है।

श्री भगवान कहते हैं कि कर्तव्य और अकर्तव्य के निश्चय में शास्त्र ही प्रमाण है :–

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि। (गीता 16/24)

कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण हैं। ऐसा जानकर तुम इस लोक में शास्त्रविहित कर्म ही करने योग्य हो। अर्थात् अपना कर्तव्य निश्चित करते समय शास्त्रों का सहारा लेना चाहिए। शास्त्रों में मनुष्यों के स्वभाव के अनुसार विभिन्न प्रकार के कर्म कहे गये हैं। शास्त्रों में करने योग्य और न करने योग्य कर्मों का वर्णन है। देश काल और परिस्थिति के अनुसार मनुष्य को विभिन्न प्रकार के कर्म करने पड़ते हैं। इसलिए कर्तव्य का निश्चित करते समय कर्म के औचित्य पर विचार कर लेना चाहिए। उचित और अनुचित का निश्चत शास्त्रों के आधार पर सरलता से हो जाता है। इसलिए सभी मनुष्यों को शास्त्रविहित और शास्त्रनिषिद्ध कर्मों का ज्ञान रखना चाहिए।

उत्तम कर्मों में 'सत्त्' शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्षमा, दया, पूजा, पाठादि जितने भी शास्त्रविहित शुभ कर्म हैं वे स्वयं ही प्रशंसनीय होने से सत्कर्म हैं। वस्तुतः प्रशंसनीय कर्म वे होते हैं जो स्वार्थ, अभिमान त्यागपूर्वक "सर्वभूतहितेरताः" भाव से किये जाते हैं। इसी प्रकार जिस पुरूष में साधुता होती है वह सत्पुरूष कहलाता है और उसके आचरणों के साथ सत् शब्द जुड़ जाने से सदाचार कहलाता है। श्रीभगवान के लिए प्रशस्त कर्म करने वाले सदाचारी पुरूष का कभी नाश नहीं होता –

पार्थनैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याण कृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।। (गीता 6/40)

हे अर्जुन! उस पुरूष का न तो इस लोक में न परलोक में ही नाश होता है, क्योंकि हे तात कोई भी कल्याणकारी कर्म करने वाला मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।। (गीता 17/27)

यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है वह भी सत् कही जाती है सदाचार में यज्ञ, दान और तप ये तीनों प्रधान हैं किन्तु इनका सम्बन्ध परमात्मा से होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि निष्काम भाव से किये हुए सात्विक यज्ञ, सात्विक तप और सात्विक दान से प्राप्त होने वाली निष्ठा भी सत् है। इसी प्रकार यज्ञ, तप और दान के अतिरिक्त अन्य जितने भी श्रेष्ठ कर्म निष्काम भाव से ईश्वरार्पण बुद्धि

से किये जाते हैं। वे सभी सत् हैं। यज्ञ, तप दान सहित अन्य श्रेष्ठ कर्म सदैव निष्काम भाव से करते रहना चाहिए।

साधारण से साधारण स्वाभाविक व्यावहारिक कर्म भी यदि परमात्मा के लिए किया जाय तो वह भी सत् (आचार) हो जाता है। श्री भगवान कहते हैं :–

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। (गीता 18/46)

अपने कर्मों द्वारा उस परमात्मा का पूजन करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है। सभी को उस परमेश्वर की शरण ग्रहण करके ईश्वरार्पण बुद्धि से अपने–अपने कर्म करने चाहिए। जिसमें जैसी योग्यता है अथवा रूचि है, वह उसी के अनुसार अपना कर्म करें। मनुष्य को सदैव श्रेष्ठ कर्म करना चाहिए, कभी निषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिए। मनुष्य को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। इस भाव से कर्म करना चाहिए।

श्रीमद् भगवद्गीता में सदाचार सूत्र यही बतलाया गया है कि यदि मनुष्य का लक्ष्य केवल सत् (परमात्मा) हो जाय, तो उसके समस्त कर्म भी 'सत' 'आचार' अर्थात् सदाचार स्वरूप हो जाएंगे। अतएव सत् स्वरूप एवं सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा की ओर अपनी वषत्ति रखनी चाहिए। फिर सद्गुण सदाचार स्वतः प्रकट होने लगेंगे।